Bundelkhand Journal of Academic Research

भारतीय संविधान की नौवीं अनुसूची का एक अवलोकन

बृजेन्द्र सिंह[1], डॉ. कामिनी कुशवाहा[2]

1. **शोधार्थी (राजनीति विज्ञान),** गायत्री शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान (जीएसपीएस), अतर्रा, बांदा, उत्तर प्रदेश।
2. **प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान,** शासकीय कला एवं विज्ञान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छत्तीसगढ़

(**Corresponding Author:** bsingh991991@gmail.com)

https://doi.org/10.5281/zenodo.21312261

सारांश

भारत जैसे देश में न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका के बीच संबंध हमेशा से ही विवादास्पद रहे हैं। भारतीय संविधान के 75 वर्षों के कार्यकाल में एक तरफ न्यायपालिका और कार्यपालिका, वहीं दूसरी ओर विधायिका के बीच सर्वोच्चता का संघर्ष कई बार देखने को मिला है। इस संघर्ष का एक कारण हमेशा से नौवीं अनुसूची रही है। नौवीं अनुसूची में वर्तमान में 284 विषय हैं। इसे 1951 के पहले संविधान संशोधन के माध्यम से जोड़ा गया था और इसका मुख्य उद्देश्य कुछ कानूनों को अदालती समीक्षा से बचाना था। नौवीं अनुसूची में शामिल विषयों में मुख्यतः भूमि सुधार, जमींदारी उन्मूलन और सामाजिक–आर्थिक नीतियां शामिल हैं। इन कानूनों को न्यायिक समीक्षा से बचाने के लिए नौवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। नौवीं अनुसूची में शामिल कानूनों को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है, हालांकि, कुछ मामलों में सुप्रीम कोर्ट ने नौवीं अनुसूची में शामिल कानूनों की न्यायिक समीक्षा की है। जबकि नौवीं अनुसूची में शामिल कानूनों को अदालती समीक्षा से बचाने का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सरकार बिना किसी कानूनी बाधा के सामाजिक और आर्थिक सुधारों को लागू कर सके। प्रस्तुत शोध पत्र में नौवीं अनुसूची की निष्पक्ष समझ के लिए इसके गहन अवलोकन का प्रयास किया गया है।

आलेख सूचना			
	प्राप्त: 08 अगस्त, 2025	**स्वीकृत:** 10 सितम्बर, 2025	**प्रकाशित:** 30 सितम्बर, 2025
	सारणी: 02	**चित्र एवं ग्राफ:** 00	**स्रोत एवं संदर्भ:** 24
	मुख्य शब्द: विधायन, निर्णयन, नौवीं अनुसूची, न्यायिक समीक्षा, संविधान संशोधन।		

परिचय एवं पृष्ठभूमि: भारतीय संविधान में उल्लेखित नौवी अनुसूची संविधान की अनोखी विशेषता है। यह मूल संविधान का भाग नहीं थी, क्योंकि इसे पहले संविधान संशोधन द्वारा 1951 में जोड़ा गया था। इसे अनूठी विशेषता इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इस प्रावधान में कुछ ऐसी विधियां शामिल हैं, जिन्हें संविधान के साथ असंगत होने के बावजूद भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है। न्यायिक समीक्षा न्यायपालिका का संविधान प्रदत्त क्षेत्राधिकार होने के बावजूद नौवी अनुसूची द्वारा कुछ विधियां न्यायिक समीक्षा से बाहर कर दी गई है। संविधान के पूर्णतः प्रभावी होने के 16 महीने बाद 12 मई 1951 को संसद में पहला संविधान संशोधन विधेयक पेश किया गया, जो प्रवर समिति में भेजे जाने और संसद में गहन विमर्श के बाद अंततः 18 जून 1951 को राष्ट्रपति की मंजूरी के साथ अधिनियमित हो गया। पहला संशोधन मौलिक अधिकारों के साथ कई अन्य विषयों से भी संबंधित था। मौलिक अधिकारों के अध्याय में संशोधित अनुच्छेद–15, अनुच्छेद–19(2), अनुच्छेद–19(6) और अनुच्छेद–29(2) थे। इसमें दो नए अनुच्छेद–41ए और अनुच्छेद–31बी भी जोड़े गए, इनके साथ एक नई नौवीं अनुसूची भी जोड़ी गई।

अनुच्छेद–31ए, मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर आधारित चुनौतियों से संपदा कानूनों की रक्षा करता था। जबकि अनुच्छेद–31बी में कहा गया कि नौवीं अनुसूची में निर्दिष्ट कोई भी अधिनियम और विनियम शून्य नहीं माना जाएगा, यदि वह भाग–III के किसी प्रावधान से असंगत है या अधिकारों द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनता है। यह भी कि किसी भी न्यायालय के किसी भी विपरीत निर्णय के बावजूद, उक्त अधिनियम और विनियम, किसी भी सक्षम विधायिका की निरसन या संशोधन की शक्ति के अधीन लागू रहेगा। नौवीं अनुसूची में शुरू में 13 अधिनियम और

विनियम शामिल थे, जिसमें बढ़कर अब 284 अधिनियम हो गए हैं, जिनमें से करीब 218 अधिनियम 24 अप्रैल, 1973 के बाद सम्मिलित किए गए हैं। अनुसूची में अंतिम बार 1995 में कुछ अधिनियम जोड़े गए थे, जब संसद ने 78वां संशोधन पारित किया था, जिसमें कुछ राज्य अधिनियम जोड़े गए थे, जिसके चलते नौवीं अनुसूची में कुल अधिनियमों की संख्या 284 हो गई थी।

नौवीं अनुसूची के अध्ययन का औचित्यः शुरुआत में, नौवीं अनुसूची में शामिल कानूनों को न्यायिक समीक्षा से पूरी तरह मुक्त माना जाता था। इसका उद्देश्य प्रगतिशील कानूनों, खासकर भूमि सुधारों से संबंधित कानूनों को मौलिक अधिकारों पर आधारित कानूनी चुनौतियों के डर के बिना एक 'सुरक्षित संवैधानिक आश्रय' प्रदान करना था। संविधान में नौवी अनुसूची जोड़ने के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित रहे हैः

- कृषि सुधार कानूनों को संरक्षण प्रदान करना।
- जमींदारी प्रथा का उन्मूलन करना।
- मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर न्यायालय में चुनौती दिये जाने वाले कानूनों को बचाना।
- समाज के कमजोर वर्गों को मुख्यधारा में लाना।
- समतावादी संवैधानिक लक्ष्यों के साथ सामजिक न्याय की ओर सामाजिक परिवर्तनो को बढ़ावा देना।
- चुनिंदा हाथों में भूमि को केन्द्रित होने से रोकना और युक्तिसंगत वितरण सुनिश्चित करना।

नौवी अनुसूची को संसदीय विधायिका के उन संविधान निर्माताओं ने जोडी जिन्होंने स्वयं ही संविधान बनाया था, जिसके पीछे समतावादी संवैधानिक लक्ष्यों के साथ सामजिक न्याय की ओर सामाजिक परिवर्तनो को बढ़ाने का स्पष्ट उद्देश्य था। हालांकि, शुरुआत में संशोधन द्वारा इसमें 13 कानूनों को शामिल किया गया। लेकिन फिलहाल इसमें 284 कानून है। दूसरा, नौवीं अनुसूची कृषि सुधार कानूनो को न्यायिक दायरे से बाहर करने हेतु जोड़ी गई, लेकिन अब इसमें कृषि सुधारों से इतर कानून भी शामिल हैं। इसे निम्न सारणी से समझा जा सकता हैः

सारणी-1: नौंवी अनुसूची में शामिल के विषयों का विवरण

क्रम	नौंवी अनुसूची के विषय	कानूनों की संख्या
1.	कृषि एवं भूमि सुधार	249
2.	औद्योगिक विकास	05
3.	आर्थिक अपराध, कोफेपोसा, फेरा	07
4.	निर्वाचन व प्रेस	02
5.	समाज कल्याण	06
6.	तमिलनाडु आरक्षण	01
7.	कर्नाटक अनुसूचित जाति व जनजाति (पीटीसीएल) कानून 1978	01
8.	कृषि एवं भूमि सुधार से असंबंधित विविध विषय	13
	नौंवी अनुसूची में शामिल कानूनों की कुल संख्या	284

सारणी–1 से स्पष्ट है कि नौंवी अनुसूची में 35 ऐसे कानून शामिल है जो कृषि अथवा भूमि सुधारों से सम्बन्धित नहीं हैं। हालाँकि, समय के साथ विभिन्न प्रकार के कानून, जिनमें उद्योग, खनन और यहाँ तक कि आरक्षण नीतियों से संबंधित कानून भी नौवीं अनुसूची में जोड़ दिए गए, जिससे इसका विस्तार अपने मूल उद्देश्य से कहीं आगे बढ़ गया। इसलिए अब इसके अध्ययन का दोहरा महत्व है। एक तो, नौवीं अनुसूची ने सुधार प्रक्रिया को सुगम बनाया है, क्योंकि इसने निस्संदेह महत्वपूर्ण भूमि सुधारों और सामाजिक–आर्थिक कानूनों के कार्यान्वयन को सक्षम बनाया, जो अन्यथा लंबी कानूनी लड़ाई के कारण रुक सकते थे, इस प्रकार सामाजिक न्याय में योगदान दिया। दूसरा, इसने विधायिका और न्यापालिका को बहस का विषय उपलब्ध कराया है। यह एक विवादास्पद प्रावधान भी बन गया, क्योंकि इसने "संविधान के भीतर संविधान" की स्थापना की, परिणामस्वरूप विधायिका को मौलिक अधिकारों और न्यायिक जाँच से बचने का अधिकार मिल गया, जिससे संविधान का मूल ढाँचा कमज़ोर हो गया।

नौवीं अनुसूची के विधायन पर विमर्शः स्वतंत्रता से पूर्व देश के कई भागों में जमींदारी प्रथा का प्रचलन था, जिसके अन्तर्गत कृषि कार्य करने वाले लोग व खेतों के मालिक अलग–अलग थे। जमींदारी प्रथा शोपण का एक प्रचलित रूप थी। सामाजिक व आर्थिक न्याय के अभाव में लोकतांत्रिक आदर्शों को वास्तविकता में लागू नहीं किया जा रहा था। 26 जनवरी, 1950 को लागू संविधान में प्रस्तावना व नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत विस्तार से सामाजिक–आर्थिक न्याय

का उल्लेख है। लोकतांत्रिक आदर्श व संवैधानिक आदर्श प्राप्त करना नीति निर्माताओ के समक्ष चुनौती था। ऐसी स्थिति में विभिन्न सरकारो द्वारा अपने राज्यो में इन आदशों की स्थापना हेतु कृपि सुधार कानून बनाए गए और लागू किए गए, क्योंकि संविधान लागू होने से पहले आजादी और राष्ट्रवादी आंदोलन द्वारा दिए गए भूमि सुधार, ज़मींदारी उन्मूलन आदि के पक्ष में लंबे समय से बहुत सी प्रतिबद्धताएं थीं। जबकि शुरुआती दौर में हर बार जब भूमि अधिग्रहण का कोई विवाद अदालत के सामने आया, तो इसे मुख्य रूप से मुआवजे के भुगतान के मामलों में भूमि मालिकों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार के आधार पर खारिज कर दिया गया, क्योंकि अनुच्छेद–14 के तहत समानता के अधिकार का उल्लंघन होता था, जिससे भूमि सुधार की नीति को आगे बढ़ाना असंभव हो जाता है। साथ ही, अनुच्छेद 31 के अन्तर्गत सम्पत्ति के अधिकार का उल्लेख भी मौलिक अधिकार के रूप में था। परिणामस्वरूप, राज्यों द्वारा बनाए गए भूमि सुधार कानूनों को उच्च न्यायालयों में चुनौति दी गई। वर्ष 1951 में कामेश्वर सिंह बनाम् बिहार राज्य (एआईआर 1952 एससी 252) के मामले में पटना उच्च न्यायालय ने बिहार भूमि सुधार कानून को मौलिक अधिकारों का उल्लघन मानते हुए असंवैधानिक घोषित कर दिया। हालांकि, इलाहाबाद व नागपुर उच्च न्यायालयों ने कृषि सुधारो को सही ठहराया। परिणामस्वरूप पीड़ित पक्ष और कुछ याचिकाकर्ताओं ने अनुच्छेद–32 के अन्तर्गत सीधे उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर की। इस पर उच्चतम न्यायालय में अपना कोई निर्णय देता, उससे पूर्व ही सामाजिक, आर्थिक पुनर्निर्माण कार्यक्रम को लागू करने हेतु प्रतिबद्ध जवाहरलाल नेहरू सरकार द्वारा संविधान में संशोधन हेतु प्रस्ताव तैयार कर लिया गया। नेहरू कृषि सुधारों के प्रति अत्यधिक उत्साही थे और वे ऐसे कार्यक्रमों में न्यायिक प्रक्रिया के कारण हो रही देरी से दुखी भी थे। शायद, उन्हें न्यायालय द्वारा इन सुधारों को असवैधानिक घोपित होने का भी डर था। इसको ध्यान में रखते हुए नेहरू सरकार द्वारा वर्ष 1951 में संविधान में संशोधन हेतु विधेयक रख दिया गया।

यहां यह ध्यान देना आवश्यक है कि एक तो, संविधान को लागू हुए अभी 15 माह ही हुए थे। दूसरा, संसद का स्वरूप अंतरिम था अर्थात संविधान सभा ही अंतरिम संसद के रूप में कार्य कर रही थी। तीसरा, मामला देश के सबसे बड़े न्यायालय में विचाराधीन था। इसके बावजूद सरकार ने प्रथम संविधान संशोधन विधेयक संसद में रख दिया। जवाहरलाल नेहरू ने अपने सम्बोधन में कहा कि यदि वे भूमि के समुचित प्रबन्धन में असफल रहे तो उनके सभी कार्यक्रम असफल हो जायेंगे। हालांकि, इस पर कई सदस्यों जैसे श्यामा प्रसाद मुखर्जी, हृदयनाथ कुंजरू, के. टी. शाह, आचार्य कृपलानी आदि ने संशोधन का विरोध किया। उनका यह मानना था कि इस पर न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा की जाए। हुसैन इमाम ने तो यहाँ तक कह दिया कि यह अनावश्यक व असमय किया गया संशोधन है। प्रो. के. टी. शाह ने न्यायालय की पवित्रता बनाए रखने हेतु इसके विरोध की अपील की। लेकिन नेहरू इसमें पूर्णतया अडिग थे। उन्होंने स्पष्ट कहा कि लाखों लोग दशकों से इसका इंतजार कर रहे है और केवल छोटे विधिक तर्क इन लाखों लोगों के सामने नहीं आ सकते हैं।

उन्होने संविधान सभा का हवाला देते हुए कहा कि सभा में इस पर सहमति थी कि ऐसे परिवर्तन को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जायेगी। शायद यहाँ नेहरू 10 सितम्बर 1949 को संविधान सभा में हुई उस बहस की ओर संकेत कर रहे थे जिसमें उन्होंने स्वय यह कहा था कि यदि लोक उपयोग में सम्पत्ति की आवश्यकता पड़ी तो राज्य विधि बनाकर उस सम्पत्ति को अनिवार्य रूप से अर्जित कर सकता है और विधि अनुसार उन्हें क्षतिपूर्ति भी की जा सकती हैं। संविधान के साथ धोखाधड़ी होने के अलावा ऐसी विधियों को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है (संविधान सभा के वाद विवाद खण्ड–IX (B), लोकसभा सचिवालय पृष्ठ–1862)। संशोधन से संबंधित कारणों में कहा गया है कि कृषि और भूमि सुधारों से संबंधित कानूनों के लिए चुनौतियां अदालतों में लंबित हैं और कमजोर कानून के माध्यम से भूमि की बड़ी योजनाएं आयोजित नहीं हो सकती हैं। 18 मई, 1951 को संसदीय बहस में तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि हम समाधान के लिए भ्रम और अराजकता का इंतजार नहीं कर सकते, जबकि कृषि संबंधी परेशानियां शक्तिशाली हो रही हैं। उन्होंने कहा कि खाद्य उत्पादन, प्रतिभूतियों और यहां तक कि किसानों और व्यक्तियों के दृष्टिकोण से ऐसे भ्रम राज्य के लिए खतरनाक हैं। जैसे कि बिहार, इलाहाबाद और नागपुर उच्च न्यायालय द्वारा भूमि सुधारों पर विरोधाभासी निर्णय की परिस्थितियां पैदा हुई हैं। हालांकि, संविधान सभा के सदस्य रहे प्रो. के. टी. शाह ने सर्वोच्च न्यायालय की पवित्रता को बनाए रखने के लिए नौवीं अनुसूची के निर्माण का विरोध करते हुए कहा कि राष्ट्रपति के संदर्भ में शीर्ष अदालत द्वारा विचार किए जाने के बाद ही किसी अधिनियम को नौवीं अनुसूची में डाला जाए। लेकिन नेहरू का तर्क था कि "लाखों लोग दशकों से इंतजार कर रहे हैं। इसलिए, क्षुद्र कानूनी तर्क इन लाखों के रास्ते में नहीं आने चाहिए। हम केवल चीजों को प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं और न ही स्थितियों को बदलने के लिए बड़ी क्रांतियों की प्रतीक्षा कर सकते हैं।" उल्लेखनीय है कि नौवीं अनुसूची के लिए बाहरी प्रेरणा आयरलैंड से आई थी, जहां भूमि को असमान रूप से वितरित किया गया था।

नौवीं अनुसूची के संबंध में तत्कालीन कानून मंत्री डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने आक्रामक रुख अपनाते हुए सदन को समझाया कि आयरिश कानून में एक अलग बोर्ड नियुक्त किया गया है, जिसके पास भूमि अधिग्रहण करने, जोतों को तोड़ने, भूमि को समान करने और पड़ोसी मालिक से भूमि लेकर गैर–आर्थिक जोतों को आर्थिक जोत बनाने का

अधिकार है और मुआवज़ा देने का अधिकार भी इसी बोर्ड को दिया गया है। उन्होंने इस बात पर भी ज़ोर दिया कि इस बोर्ड के कार्यों की व्याख्या करने के लिए कोई न्यायिक प्राधिकार नहीं है और बोर्ड के निर्णय के विरुद्ध कोई अपील नहीं है। परिणामस्वरूप, आयरलैंड में भूमि का समान रूप से वितरण काफी सुगम सिद्ध हुआ था। इस तरह, उपर्युक्त बहसों से यह स्पष्ट है कि यह न्यायपालिका द्वारा भूमि सुधारों को रद्द कर दिए जाने का डर नहीं था जिसने ऐसे कानूनों को न्यायिक दायरे से बाहर रखने के लिए मजबूर किया, बल्कि यह न्यायपालिका द्वारा परिवर्तन का विरोध करने के रवैये के प्रति असाधारण अधीरता थी जिसने उन्हें ऐसा करने के लिए मजबूर किया। इस तरह, संसद में लम्बी बहस के बाद संशोधन पर मतदान हुआ, जिसके बाद 18 जून, 1951 को राष्ट्रपति ने इसे अपनी स्वीकृति प्रदान की। परिणामस्वरूप, संसद ने पहली बार संविधान में संशोधन कर कृषि सुधार लाने के लिए कानून बनाने की प्रक्रिया में सहायता के लिए अनुच्छेद–31ए और 31बी जोड़ कर ऐसे विधायी उपायों को इस आधार पर उन्मुक्ति प्रदान की कि वे नागरिक के मौलिक अधिकारों की अवहेलना करते हैं। इसी संशोधन ने आठवीं अनुसूची के बाद एक नई नौवीं अनुसूची जोड़ी, जिसमें शामिल सभी 13 मदें भूमि सुधार कानूनों से संबंधित थीं, इनको संविधान के अनुच्छेद–13 के उल्लंघन के आधार पर चुनौती से भी उन्मुक्ति प्रदान की गई। अनुच्छेद–13, अन्य बातों के साथ यह प्रावधान करता है कि राज्य ऐसा कोई कानून नहीं बनाएगा, जो भाग–III द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनता या कम करता हो और इसके उल्लंघन में बनाया गया कोई भी कानून उल्लंघन की सीमा तक शून्य होगा।

नौवीं अनुसूची पर न्यायिक निर्णयः गोलक नाथ बनाम पंजाब (एआईआर 1967 एस.सी.1643) में न्यायमूर्ति हिदायतुल्लाह ने कहा था कि "हमारा संविधान विश्व का एकमात्र ऐसा संविधान है जिसमें कानूनों की एक लम्बी सूची है, जिसे वह स्वयं के विरुद्ध संरक्षित करता है।" नौवीं अनुसूची में शामिल कानून भी इससे भिन्न नहीं थे। यही कारण था कि अनुसूची के उद्देश्य और प्रभावशीलता प्रारम्भ से ही संदेह के घेरे में रहे हैं। पहले संशोधन की संवैधानिक वैधता को पहली बार शंकरी प्रसाद सिंह देव बनाम भारत संघ और बिहार राज्य (1952 एससीआर 89) में चुनौती दी गई थी, जिसमें यह प्रश्न उठाया गया कि क्या प्रथम संशोधन अधिनियम, 1951 जिसका उद्देश्य संविधान में अन्य बातों के साथ अनुच्छेद–31ए और 31बी को शामिल करना है, अधिकारहीन और असंवैधानिक है। हालांकि, इसमें संशोधन की वैधता को बरकरार रखते हुए यह माना गया कि अनुच्छेद–13(2), अनुच्छेद–368 के तहत किए गए संविधान संशोधन को प्रभावित नहीं करता है। संशोधन का मुख्य उद्देश्य जमींदारी उन्मूलन कानूनों और कुछ निर्दिष्ट अधिनियमों की संवैधानिक वैधता को पूरी तरह से सुरक्षित करना और उन प्रावधानों को विलंबकारी मुकदमेबाजी से बचाना था, जिसके परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में लोगों को प्रभावित करने वाले सामाजिक सुधार उपायों के कार्यान्वयन में देरी हुई। संवैधानिक पीठ ने कहा कि संविधान का उल्लंघन करने वाले कानून को संवैधानिक रूप से वैध बनाना संविधान संशोधन का विषय है और यह संसद की विशेष शक्ति के अंतर्गत आता है।

अनुच्छेद–31बी के प्रति न्यायालय के रवैये का एक उल्लेखनीय उदाहरण धीरूभा देवीसिंह गोहिल बनाम बॉम्बे राज्य (एआईआर 1955 एससी 47) मामले में देखा जा सकता है। बॉम्बे ताल्लुकदारी काश्तकारी उन्मूलन अधिनियम,1949 जो संविधान–पूर्व का एक क़ानून था और अनुसूची–IX में शामिल था, को इस आधार पर चुनौती दी गई कि यह "न तो संघीय और न ही प्रांतीय विधानमंडल को सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए किसी भूमि के अनिवार्य अधिग्रहण को अधिकृत करने वाला कोई कानून बनाने का अधिकार होगा, जब तक कि कानून में अर्जित संपत्ति के लिए मुआवजे के भुगतान का प्रावधान न हो।" इसमें सुप्रीम कोर्ट ने माना कि संविधान के भाग–III द्वारा किसी व्यक्ति को सुरक्षित अधिकारों में से एक अधिकार यह है कि उसकी संपत्ति केवल सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए और ऐसे अधिग्रहण को अधिकृत करने वाले कानून के तहत अर्जित की जाएगी और मुआवजे का प्रावधान किया जाएगा जो या तो कानून द्वारा तय किया गया है या कानून द्वारा निर्दिष्ट सिद्धांतों द्वारा विनियमित है। यह वही अधिकार है जो पहले भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 299 के तहत सुरक्षित था। उल्लेखनीय है कि भारत सरकार अधिनियम,1935 की धारा 299 और संविधान के अनुच्छेद 31 के अनुसार विधानमंडल केवल सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए निजी संपत्ति के अधिग्रहण के लिए कानून बना सकता है, लेकिन निजी प्रयोजनों के लिए नहीं; हालांकि, इसमें प्रयुक्त भाषा इतनी स्पष्ट नहीं थी।

वर्ष 1964 में सरकार ने सत्रहवाँ संशोधन पारित कर नौवीं अनुसूची में 44 नए अधिनियम शामिल किए, क्योंकि कृषि सुधारों की नीति को प्रभावी बनाने के लिए कुछ राज्यों द्वारा अपनाए गए राज्य विधायी उपायों को अदालतों में इस आधार पर गंभीर चुनौती का सामना करना पड़ सकता है कि वे भाग–III द्वारा नागरिकों को प्रदत्त मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते हैं। इन अधिनियमों को सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य (एआईआर 1965 एससी 845) में चुनौती दी गई। इस निर्णय पर न्यायालय ने कहा कि "यदि याचिकाकर्ताओं द्वारा दिए गए तर्क मान्य होते हैं, तो इसका परिणाम यह होगा कि 1951 और 1955 में किए गए संविधान संशोधन अमान्य हो जाएँगे और शंकरी प्रसाद मामले में न्यायालय के निर्णय के बाद विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा नौवीं अनुसूची में शामिल अधिनियमों की वैधता से

संबंधित अनेक निर्णय भी गंभीर संकट में पड़ जाएँगे। ये ऐसे विचार हैं जो वर्तमान कार्यवाही में हमारे समक्ष याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत इस दलील से निपटने के लिए प्रासंगिक और महत्वपूर्ण दोनों हैं कि शंकरी प्रसाद मामले पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए"। न्यायमूर्ति हिदायतुल्लाह और न्यायमूर्ति जे. आर. मुधोलकर ने मुख्य न्यायाधीश गजेंद्र गढ़कर की राय से सहमति जताई कि संशोधन को बरकरार रखा जाए, लेकिन भविष्य में संभावित संशोधनों के मौलिक अधिकारों और संविधान के मूल ढांचे पर पड़ने वाले प्रभाव को लेकर अपनी शंकाएँ भी व्यक्त कीं। न्यायमूर्ति मुधोलकर ने सवाल किया कि "यह भी विचारणीय विषय है कि क्या संविधान की किसी मूल विशेषता में बदलाव को केवल संशोधन माना जा सकता है या यह वास्तव में संविधान के किसी भाग का पुनर्लेखन होगा; और यदि ऐसा है, तो क्या यह अनुच्छेद 368 के दायरे में आएगा?"

गोलक नाथ एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1967 एससी 1643) के मामले में संविधान (सत्रहवां) संशोधन अधिनियम की वैधता को सर्वोच्च न्यायालय में एक रिट याचिका के माध्यम से चुनौती दी गई थी जिसमें मैसूर भूमि सुधार अधिनियम, 1961 और पंजाब भूमि पट्टा सुरक्षा अधिनियम, 1953 को नौवीं अनुसूची में शामिल किया गया था। 11 न्यायाधीशों की पीठ ने शंकरी प्रसाद और सज्जन सिंह के मामले में अपनाए गए दृष्टिकोण की सत्यता पर विचार किया। इन फैसलों को 5–6 के बहुमत से खारिज कर यह माना गया कि संविधान संशोधन संविधान के अनुच्छेद–13 के अर्थ में 'कानून' है, जिसमें कहा गया है कि राज्य को ऐसा कोई भी कानून बनाने से प्रतिबंधित किया गया है जो भाग–III द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को छीनता या कम करता है और इसलिए, यदि यह भाग–III द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनता है, तो यह शून्य है। यह घोषित किया गया कि निर्णय की तिथि (27 फ़रवरी, 1967) से संसद को संविधान के भाग–III के किसी भी प्रावधान में संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं होगा जिससे उसमें निहित मौलिक अधिकारों को छीना या कम किया जा सके। इस प्रकार, गोलक नाथ मामला न्यायपालिका द्वारा नौवीं अनुसूची पर पहला बड़ा प्रहार था।

अनुच्छेद–31बी में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि निर्दिष्ट अधिनियमों में से कोई भी शून्य नहीं माना जाएगा और वे सक्षम विधायिका की शक्ति के अधीन रहते हुए लागू रहेंगे, जो उन्हें निरस्त या संशोधित कर सकती है। इस प्रकार अनुच्छेद–31बी पूर्वव्यापी है। कई निर्णयों में यह प्रश्न उठा है कि क्या किसी न्यायालय द्वारा शून्य घोषित किए गए अधिनियम को अनुसूची में शामिल करके वैध ठहराया जा सकता है। इस संबंध में तर्क दिया गया है कि ऐसा अधिनियम मृत और आरंभ से ही शून्य होता है और इसलिए, इसे सक्षम विधायिका द्वारा पुनः अधिनियमित किए बिना वैध नहीं ठहराया जा सकता। इस तर्क को सर्वोच्च न्यायालय ने इस आधार पर खारिज कर दिया कि अनुच्छेद–31बी और नौवीं अनुसूची में उल्लिखित विभिन्न अधिनियमों में मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर आरोपित किसी भी असंवैधानिकता के संबंध में, यदि दोषों को दूर कर दिया है, और अनुच्छेद–31बी के अनुसार, दोषों का ऐसा निवारण उन तिथियों से पूर्वव्यापी प्रभाव के साथ हुआ है, जिन तिथियों को अधिनियमों को संविधि पुस्तिका में रखा गया था। (एल. जगन्नाथ बनाम प्राधिकृत अधिकारी, एआईआर 1972 एससी. 398, रमनलाल बनाम गुजरात, एआईआर 1969 एससी. 168, श्री राम नारायण मेधी बनाम जे. एंड के. एआईआर 1959 जेएंडके. 35; अब्दुल रहमान बनाम विट्ठल अर्जुन, एआईआर 1958 बॉम्बे 94)

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (एआईआर 1973 एससी. 1461) मामले में 29वें संशोधन की संवैधानिकता को चुनौती दी गई थी, जिसने संविधान की नौवीं अनुसूची में संशोधन किया था और प्रविष्टि–64 के बाद भूमि सुधारों को आगे बढ़ाने के लिए दो प्रविष्टि–65 (केरल भूमि सुधार संशोधन अधिनियम, 1969) और प्रविष्टि–66 (केरल भूमि सुधार संशोधन अधिनियम, 1971) को सम्मिलित किया था। केशवानंद भारती मामले में 24 अप्रैल, 1973 को 13 न्यायाधीशों की पीठ ने फैसला सुनाने हुए बहुमत से 29वें संशोधन, 1972 की वैधता को बरकरार रखा, जिसके तहत केरल भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 1969 और 1971 को शामिल किया गया था। हालांकि, बहुमत ने संविधान में संशोधन करने की संसद की असीमित शक्ति को स्वीकार नहीं किया और यह माना कि अनुच्छेद–368 में सीमाएँ निहित हैं। अनुच्छेद–368 संसद को संविधान के मूल ढांचे में बदलाव करने का अधिकार नहीं देता है।

इंदिरा गांधी मामले (एआईआर 1975 एससी. 2299) में न्यायमूर्ति मैथ्यू द्वारा व्यक्त यह विचार कि अनुसूची में शामिल विधान मूल ढांचे की कसौटी के अधीन हैं और यह वामन राव बनाम भारत संघ (एआईआर 1981 एससी. 271) में न्यायालय द्वारा सर्वसम्मति से समर्थित था। मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ ने, जिन्होंने इंदिरा गांधी मामले में अपने पूर्व के विचार का कोई संदर्भ दिए बिना, बहुमत की राय व्यक्त करते हुए स्पष्ट रूप से घोषित किया कि 24 अप्रैल, 1973 को या उसके बाद, अर्थात् केशवानंद भारती मामले में निर्णय सुनाए जाने की तिथि को नौवीं अनुसूची में परिवर्धन द्वारा किए गए विभिन्न संवैधानिक संशोधन केवल तभी वैध होंगे जब वे संविधान के मूल ढांचे को क्षति या विनाश न पहुंचाए। इस तरह, वामन राव वनाम भारत संघ (1981) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्थापित किया कि वे संशोधन जो 24 अप्रैल, 1973 से पहले संविधान में किये गए (जिस तारीख को केशवानंद भारती में निर्णय दिया गया

था) वैध और संवैधानिक हैं, लेकिन जो निर्दिष्ट तिथि के बाद किये गए हैं, उन्हें संवैधानिकता के आधार पर चुनौती दी जा सकती है।

आई.आर.कोएल्हो मामला 2007 भारत के सर्वोच्च न्यायालय का एक ऐतिहासिक फैसला है, जिसमें कहा गया है कि नौवीं अनुसूची में शामिल कानूनों को भी न्यायिक समीक्षा से पूर्ण छूट नहीं मिल सकती, विशेषकर वे कानून जो संविधान की मूल संरचना का उल्लंघन करते हैं। इसने न्यायपालिका के अधिकार को स्थापित कर सुनिश्चित किया कि मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने वाले कानूनों को भी संविधान के सिद्धांतों के तहत परखा जा सकता है। 11 जनवरी, 2007 को मुख्य न्यायाधीश वाई. के. सभरवाल की अध्यक्षता वाली 9 न्यायाधीशों की पीठ ने यह निर्णय दिया कि:

i. संविधान के भाग–III द्वारा प्रदत्त अधिकारों का हनन या न्यूनीकरण करने वाला कानून मूल संरचना सिद्धांत का उल्लंघन कर भी सकता है और नहीं भी। यदि मूल संरचना सिद्धांत कानून का परिणाम है, तो न्यायालय की न्यायिक समीक्षा शक्ति के प्रयोग में ऐसे कानून को अमान्य घोषित किया जाएगा।
ii. केशवानंद भारती मामले में इंदिरा गांधी मामले के साथ बहुमत से दिए गए निर्णय में यह अपेक्षा की गई है कि प्रत्येक नए संवैधानिक संशोधन की वैधता का आकलन करने के लिए, भाग–III के तहत प्रदत्त अधिकारों पर उसके प्रभावों को ध्यान में रखा जाना चाहिए और फिर यह तय किया जाना चाहिए कि वह संविधान के मूल ढांचे को नष्ट करता है या नहीं।
iii. 24 अप्रैल को या उसके बाद किए गए संविधान के सभी संशोधनों को संविधान की मूल या आवश्यक विशेषताओं, जैसा कि अनुच्छेद–21 के साथ अनुच्छेद–14, अनुच्छेद–19 और उनमें निहित सिद्धांतों में परिलक्षित होता है, की कसौटी पर परखा जाना चाहिए। इसलिए, भले ही किसी अधिनियम को संविधान संशोधन द्वारा नौवीं अनुसूची में डाल दिया गया हो, फिर भी उसके प्रावधानों पर इस आधार पर विचार किया जा सकता है कि वे मूल ढांचे को नष्ट या क्षति पहुंचाते हैं।

इस तरह, आई. आर. कोएल्हो वनाम तमिलनाडु राज्य (2007) निर्णय में यह माना गया कि प्रत्येक कानून को अनुच्छेद 14, 19 और 21 के तहत परीक्षण किया जाना चाहिए, यदि वह 24 अप्रैल, 1973 के बाद लागू हुआ है। इसके अलावा न्यायालय ने अपने पिछले फैसलों को बरकरार रखते हुए घोषित किया कि किसी भी अधिनियम को चुनौती दी जा सकती है, वह न्यायपालिका के परीक्षण के अधीन है, यदि वह संविधान की मूल संरचना के अनुरूप नहीं है। हालांकि, यदि नौवीं अनुसूची के तहत किसी कानून की संवैधानिक वैधता को पहले बरकरार रखा गया है, तो भविष्य में इसे फिर से चुनौती नहीं दी जा सकती है।

नौवीं अनुसूची की व्यापकता: नौवीं अनुसूची मूल रूप से भूमि सुधारों से संबंधित कुछ कानूनों को प्रभावी बनाने के लिए बनाई गई थी। लेकिन, अनुसूची का इतिहास बताता है कि संसद अनुसूची की विषय–वस्तु और इसमें शामिल कानूनों की संख्या, दोनों मामले में संयम से काम लेने और संविधान की मूल भावना को कायम रखने में विफल रही है, जैसा कि सारणी–2 से स्पष्ट है।

सारणी-2: नौवीं अनुसूची में शामिल कानूनों का विवरण

क्रम	संशोधन	वर्ष	कानून क्रमांक	कानूनों की संख्या
1.	पहला संशोधन	1951	1-13	13
2.	चौथा संशोधन	1955	14-20	07
3.	17वां संशोधन	1964	21-64	44
4.	29वां संशोधन	1971	65-66	02
5.	34वां संशोधन	1974	67-86	20
6.	39वां संशोधन	1975	87-124	38
7.	40वां संशोधन	1976	125-188	64
8.	47वां संशोधन	1984	189-202	14
9.	66वां संशोधन	1990	203-257	54
10.	76वां संशोधन	1994	257A	01
11.	78वां संशोधन	1995	258-284	27

स्रोतः आई.आर. कोएलो बनाम तमिलनाडु राज्य (1999) 7 एससीसी.580 आदेश दिनांकः 14 सितम्बर, 1999 और आईआर कोएलो (मृत) एलआरएस बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य, आदेश दिनांकः 11 जनवरी, 2007।
टिप्पणीः वर्ष 1978 में 44वें संशोधन द्वारा प्रविष्टि–87 (जन प्रतिनिधित्व अधिनियम), प्रविष्टि–92 (आंतरिक सुरक्षा अधिनियम) और प्रविष्टि–130 (आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन पर रोक) को निरस्त कर दिया गया।

उल्लेखनीय है कि नौवीं अनुसूची के 284 कानूनों में से 182 कानून इन्दिरा गाँधी के प्रधानमंत्रित्व काल में नौवीं अनुसूची में शामिल किए गए हैं। सारणी–2 से स्पष्ट है कि वर्ष 1990 तक नौवीं अनुसूची में शामिल 257 कानूनों में से 32 का भूमि सुधारों से कोई संबंध नहीं था। नौवीं अनुसूची का सर्वाधिक दुरुपयोग 1975 में आपातकालीन शासन द्वारा पारित उनतीसवें संशोधन के साथ शुरू हुआ, जिसमें जनप्रतिनिधित्व अधिनियम से लेकर अतिरिक्त परिलब्धियां (अनिवार्य जमा) अधिनियम तक 38 कानून शामिल किए गए। चालीसवें संशोधन को नौवीं अनुसूची में सबसे अधिक अर्थात 64 कानून जोड़ने का श्रेय प्राप्त है, जो उस समय तक शामिल कानूनों की कुल संख्या के 50 प्रतिशत से अधिक है। इसमें भी एक अजीब संग्रह देखने को मिलता है जिसमें मोटर वाहन अधिनियम, 1939 और आपत्तिजनक मामलों के प्रकाशन की रोकथाम अधिनियम, 1976 की कुछ धाराएं शामिल हैं। वर्ष 1975 और 1976 के संशोधनों से स्पष्ट है कि किस प्रकार संसद में बहुमत से नौवीं अनुसूची को न्यायिक समीक्षा की असुविधा से बचने के लिए एक सुविधाजनक उपकरण में परिवर्तित किया जा सकता है। इसका एक उदाहरण तमिलनाडु पिछड़ा वर्ग अधिनियम, 1993 है, जिसको वर्ष 1994 में 76वें संशोधन द्वारा नौवीं अनुसूची में शामिल किया गया था। 69 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान करने वाला यह अधिनियम, मंडल आयोग मामले में सर्वोच्च न्यायालय के उस फैसले के विपरीत है जिसमें कहा गया था कि आरक्षण 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। हालांकि, इस गैर–भूमि सुधार कानून को नौवीं अनुसूची में शामिल करने और इसे न्यायिक समीक्षा से परे रखने की संवैधानिकता पर गहन बहस हुई थी।

इसका परिणाम यह हुआ कि नौवीं अनुसूची की विषयवस्तु का न्यायिक समीक्षा के अधीन आना स्वाभाविक हो गया था और आई.आर. कोएलो वाद {आई.आर. कोएलो बनाम तमिलनाडु राज्य (1999) 7 एससीसी. 580 आदेश दिनांक 14 सितम्बर, 1999 और आईआर कोएलो (मृत) एलआरएस बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य, आदेश दिनांक 11 जनवरी, 2007} में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट कर दिया कि "यदि अनुच्छेद–368, जिसे संशोधन शक्ति का दूसरा नाम भी कहा जाता है, के अंतर्गत संविधान–सम्बन्धी शक्ति को असीमित नहीं बनाया जा सकता है। इसका अर्थ है कि अनुच्छेद–31बी का उपयोग असीमित शक्ति प्रदान करने के लिए नहीं किया जा सकता है। अनुच्छेद–31बी, अनुच्छेद–368 में निहित सीमित संशोधन शक्ति से आगे नहीं जा सकता। नौवीं अनुसूची में संशोधन करने की शक्ति अनुच्छेद–368 से प्राप्त होती है और संशोधन की यह शक्ति संशोधन की शक्ति की सीमाओं के अनुरूप होनी चाहिए। यह सीमा केशवानंद भारती मामले के साथ आई थी। इसलिए, 24 अप्रैल, 1973 के बाद अनुच्छेद–31बी, अपनी व्यापक भाषा के बावजूद, अनियमित या असीमित उन्मुक्ति प्रदान नहीं कर सकता है।"

हालांकि, आई.आर. कोएलो के फैसले से यह प्रश्न अनुत्तरित है कि क्या भूमि सुधारों से असंबंधित, लेकिन प्रगतिशील प्रकृति के कानूनों को ऐसे संरक्षण की आवश्यकता नहीं है? कई कानूनों को उनके सामाजिक–आर्थिक परिप्रेक्ष्य के कारण नौवीं अनुसूची में शामिल कर न्यायिक दायरे से बाहर रखा गया है। उदाहरण के लिए, खान और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1957; एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम, 1969; कोकिंग कोल खान (आपातकालीन प्रावधान) अधिनियम, 1971; बंधुआ मजदूरी प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 आदि ऐसे ही कानून हैं, जिनके प्रति न्यायालय के निर्णय बहुत सुधारवादी नहीं कहे जा सकते हैं या फिर क्या यह कार्य अब संसद द्वारा नहीं किया जा सकता है। क्या अब सर्वोच्च न्यायालय ही जनहित का अंतिम निर्णायक है। हालांकि, आई. आर. कोएलो के फैसले की तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी ने आलोचना करते हुए कहा था कि "न्यायपालिका के पास मुकदमों के विशाल ढेर के रूप में अपनी ही कई समस्याएँ हैं, जिनसे विशाल जनहित प्रभावित हो रहा है। सर्वोच्च न्यायालय न तो नया कानून बना सकता है और न ही कानूनों में संशोधन कर सकता है। अगर किसी कानून की व्याख्या को लेकर कोई अनिश्चितता है, तो वह उसे स्पष्ट कर सकता है और उसकी स्पष्ट व्याख्या कर सकता है"।

निष्कर्ष एवं सुझावः विधायिका द्वारा न्यायिक समीक्षा से छुटकारा पाने के लिए नौवीं अनुसूची का हमेशा एक आसान उपाय के रूप में उपयोग किया गया। विभिन्न कानून (भूमि सुधारों से संबंधित और नहीं भी) जिन्हें विधायिका न्यायिक दायरे से बाहर रखना चाहती थी, उन्हें नौवीं अनुसूची में शामिल कर दिया गया। परिणामस्वरूप, विधायिका के दुरुपयोग द्वारा नौवीं अनुसूची वोट बटोरने का एक ज़रिया बन गई, जिसके चलते न्यायपालिका ने मूल ढाँचे का आविष्कार किया। मूल ढाँचे का सिद्धांत नौवीं अनुसूची के दुरुपयोग के लिए अपनाए गए संदिग्ध प्रयासों का प्रतिफल था, जिसके कारण अंततः नौवीं अनुसूची का सही अनुप्रयोग सुनिश्चित हुआ है। आई.आर. कोएलो के फैसले के बाद,

विधायिका द्वारा नौवीं अनुसूची का अब अधिक दुरुपयोग नहीं किया जा सकेगा और इसमें शामिल अधिनियम और विनियम अब न्यायिक समीक्षा के लिए खुले हैं। लेकिन, इस फैसले ने एक ओर न्यायपालिका और विधायिका जबकि दूसरी ओर कार्यपालिका के बीच सर्वोच्चता के संघर्ष को जन्म दे दिया है। विधायिका का मानना है कि किसी भी कानून में बदलाव करना या किसी कानून में संशोधन करना न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र से बाहर है।

इस संबंध में एक प्रश्न यह भी उठता है कि क्या मौजूदा स्थिति में नौवीं अनुसूची आवश्यक है या फिर नहीं, क्योंकि एक तो, नौवीं अनुसूची लागू करने का उद्देश्य कुछ सुधारवादी कानूनों को न्यायिक दायरे से बाहर रखना था, क्योंकि ये कानून, प्रकृति में प्रगतिशील होने के बावजूद, संपत्ति के अधिकार का उल्लंघन कर सकते हैं। हालाँकि, संपत्ति का अधिकार अब मौलिक अधिकार नहीं रह गया है और यह नौवीं अनुसूची के कानूनों के लिए कोई खतरा नहीं है। दूसरा, वर्ष 1991 के बाद, केंद्र सरकार के आर्थिक दृष्टिकोण और नीति में मौलिक बदलाव आया है, जो सामाजिक सुधार की सक्रिय नीति में विश्वास नहीं रखती, बल्कि आर्थिक सुधारों का लाभ गरीब लोगों तक "रिसाव प्रक्रिया" से बढ़ा रही है। इसलिए, नौवीं अनुसूची अपने मूल उद्देश्य के संदर्भ में निरर्थक हो जाती है।

हालांकि, इसका आशय यह नहीं है कि नौवीं अनुसूची मौजूदा दौर में पूर्णतः निरर्थक हो चुकी है, क्योंकि नौवीं अनुसूची का मुख्य उद्देश्य भूमि सुधार कानूनों को न्यायिक पुनरीक्षण से बचाना था, जिससे जमींदारी व्यवस्था समाप्त हो सके और भूमि का पुनर्वितरण वास्तविक किसानों को किया जा सके। यह अनुसूची सामाजिक और आर्थिक न्याय भी सुनिश्चित करती है ताकि सामाजिक न्याय और आर्थिक समानता लाने वाले कानूनों को न्यायालयों द्वारा निरस्त न किया जाए, जिससे कल्याणकारी कानूनों को बिना बाधा के लागू किया जा सके। शायद इसीलिए, नौवीं अनुसूची में शामिल कानूनों को मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर अदालतों द्वारा चुनौती देने से रोका गया है, ताकि ऐसे कानूनों को प्रभावी ढंग से लागू किया जा सके। यह विधायिका को मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए अदालतों द्वारा तत्काल रद्द किए जाने के खतरे के बिना आवश्यक सामाजिक–आर्थिक कानून बनाने का अधिकार देता है। विशिष्ट कानूनों को संरक्षण प्रदान करते हुए, नौवीं अनुसूची भारत के संवैधानिक लोकतंत्र में नियंत्रण और संतुलन की प्रणाली को भी प्रदर्शित करती है। कमजोर वर्गों के लाभ के लिए बनाए गए कानूनों की सुरक्षा करके अधिक समतावादी समाज बनाने के संवैधानिक लक्ष्यों को बनाए रखना भी इसका एक औचित्य रहा है। इसने सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को कम करने और प्रगतिशील सुधारों के प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से नीतियों को लागू करने के लिए एक उपकरण के रूप में कार्य किया है। नौवीं अनुसूची राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांतों और मौलिक अधिकारों के बीच एक संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती रही है,जिसके चलते सामाजिक सुधारों को संपत्ति के अधिकार जैसे मौलिक अधिकारों से अधिक प्राथमिकता दी गई है।

संविधान निर्माताओं ने कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका की भूमिका को स्पष्ट रूप से परिभाषित कर सीमांकित किया था। उन्होंने ऐसी स्थिति की कल्पना नहीं की थी जब संसद या सर्वोच्च न्यायालय सर्वोच्च होने का दावा करें। केवल संविधान और उसके लोगों को ही सर्वोच्च कहा जा सकता है। जब तक कोई संस्था अपने वैध अधिकार क्षेत्र में रहती है, तब तक संघर्ष या टकराव का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए, हम आई.आर. कोएलो मामले में दिए गए निर्णय का स्वागत करते हुए अपने निष्कर्षों का समापन करते हैं, क्योंकि विधायिका के लिए अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप नौवीं अनुसूची का उपयोग करना संभव नहीं होगा और न्यायपालिका अनुसूची में शामिल सभी कानूनों और विधानों पर नज़र रखने के लिए मौजूद रहेगी।

कुल मिलाकर, भारत में नौवीं अनुसूची के उपयोग के संबंध में न्यायिक कार्यवाहियों की विशिष्ट प्रकृति बताती है कि नौवीं अनुसूची अब मौजूदा संविधान के एक परिशिष्ट के रूप में पंजीकृत है। नौवीं अनुसूची को सामाजिक न्याय प्राप्त करने के एक उपकरण के रूप में विकसित किया गया है, लेकिन कई बार यह यह केवल विधायिका द्वारा समर्थित कानूनों को अमर बनाने का एक राजनीतिक उपकरण सिद्ध हुआ है, जिनके कारण कई बार नौवीं अनुसूची को 'संवैधानिक कूड़ेदान' का टैग दिया गया है। ऐसे में, नौवीं अनुसूची में निहित क़ानूनों के अक्षरशः और मूल भावना को निर्धारित करने के लिए उसकी व्यापक और समग्र जाँच करना आवश्यक है। यह भविष्य के अध्ययनों के लिए एक अप्रत्यक्ष आह्वान है कि वे नौवीं अनुसूची में शामिल दो सौ चौरासी कानूनों पर अधिक ध्यान केंद्रित करें, क्योंकि विद्वान और नीति–निर्माता समान रूप से इसके दुरुपयोग से संबंधित चिंताओं का समाधान करने का प्रयास करते हैं। ऐसे प्रयास नौवीं अनुसूची की विषयवस्तु को भारतीय संविधान में शामिल करने की दिशा तय कर सकते हैं, जिससे एक संपूर्ण, एकीकृत और बाध्यकारी दस्तावेज़ के रूप में इसका महत्व बना रहेगा।

स्रोत एवं संदर्भः

1. गहलोत, दिनेश कुमार (2022)। भारतीय संविधान एवं नौवीं अनुसूची, जर्नल ऑफ मॉडर्न मैनेजमेंट एंड एंटरप्रेन्योरशिप (जेएमएमई), वाल्यूम–12, अंक–01, जनवरी–मार्च 2022, पृष्ठ 260–263, आईएसएसएनः 2231–167X
2. लक्ष्मी परमेश्वरन (2020)। भारत में व्यक्तिगत कानूनों का इतिहास, इंडिया पॉलिसी फाउंडेशन, 4–5, 2020
3. डोडेजा, करिश्मा डी (2016)। "बिल्ली को घंटी बाँधनाः भारतीय संविधान में नौवीं अनुसूची का विचित्र मामला," नेशनल लॉ स्कूल ऑफ इंडिया रिव्यू, खंड 28, संख्या 1, 2016, पृष्ठ 1–17।
4. अर्चना पाराशर (2013)। गैर–राज्य कानूनों के रूप में धार्मिक व्यक्तिगत कानूनः लैंगिक न्याय पर प्रभाव, रूटलेज, 4 खंड–45, अंक–1, 2013।
5. माधव खोसला (2007)। "नौवीं अनुसूची पर निर्णयः संविधान के मूल ढांचे को परिभाषित करने का समय," इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, खंड–42, अंक–31, 2007, पृष्ठ 3203–3204।
6. सैक, पीटर (1990)। "कानूनी तकनीक और बंधुत्व की खोजः भारतीय संविधान की प्रस्तावना पर विचार।" जर्नल ऑफ द इंडियन लॉ इंस्टीट्यूट, खंड–32, अंक–3, 1990, पृष्ठ 294–308।
7. नूरानी, एजी (2007)। "नौवीं अनुसूची और सर्वोच्च न्यायालय," इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, खंड–42, अंक–9, 2007, पृष्ठ 731–734।
8. कुमार, वीरेंद्र (2007)। "भारतीय संविधान की मूल संरचनाः संवैधानिक रूप से नियंत्रित शासन का सिद्धांत (केशवानंद भारती से आईआर कोएलो तक)" जर्नल ऑफ द इंडियन लॉ इंस्टीट्यूट, खंड–49, अंक–3, 2007, पृष्ठ 365–398।
9. शंकरन, कमला (2007)। "चिंतनशील सर्वव्यापकता से ठोस पाठ्य प्रावधानों तकः आईआर कोएलो निर्णय और मूल संरचना सिद्धांत," जर्नल ऑफ द इंडियन लॉ इंस्टीट्यूट, खंड–49, अंक–2, 2007, पृष्ठ 240–248।
10. मालती राय चौधरी बनाम सुधींद्रनाथ मजूमदार ए.आई.आर. 2007।
11. विमलबेन अजीतभाई पटेल बनाम वत्सलाबेन अशोक भाई पटेल एवं अन्य 2008 (4) एस.सी.सी. 649।
12. मैसूर राज्य बनाम आर.वी. बिदप (1974) 3 एससीसी 337; फागू शॉ बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1974), 4 एससीसी 152; एस. आर. चौधरी बनाम पंजाब राज्य (2001) 7 एससीसी 126।
13. गौतम भाटिया, द ट्रांसफॉर्मेटिव कॉन्स्टिट्यूशन, ए रेडिकल बायोग्राफी इन नाइन एक्ट्स, xxviii (2019)।
14. शिवा, राव बी(1968)। द फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कॉन्स्टिट्यूशन, द इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 56 (1968)।
15. संविधान सभा वाद–विवाद, खंड–VII, 29 नवंबर 1948, http://164.100.47.194/vol7-html
16. खुशबू देव (2021)। मौलिक अधिकारों के विरुद्ध व्यक्तिगत कानून, संविधान का भाग–III, https://cjp.org.in/personal-laws-vis-a-vis-fundamental-rights-part-iii-of-the-constitution,19 मार्च, 2021
17. बंबई राज्य बनाम नरसु अप्पा माली, आपराधिक अपील संख्या 231/1951(6)
18. गौतम भाटिया (2017)। पर्सनल लॉ और संविधानः त्रिपाल तलाक पीठ को बंबई राज्य बनाम नरसु अप्पा माली, 8 मई, 2017,
19. आई.आर. कोएलो बनाम तमिलनाडु राज्य (1999) 7 एससीसी. 580 आदेश दिनांक 14 सितम्बर, 1999 और आईआर कोएलो (मृत) एलआरएस बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य, आदेश दिनांक 11 जनवरी, 2007।
20. कामेश्वर सिंह बनाम बिहार राज्य (एआईआर 1952 एससी 252)
21. कृष्ण सिंह बनाम मथुरा अहीर (1980) एआईआर 707
22. महर्षि अवधेश बनाम भारत संघ 1994 एससीसी, पूरक (1) 713
23. भारतीय विधि आयोग, पारिवारिक कानून सुधारों पर परामर्श पत्र–4, 31 अगस्त, 2018।
24. गगरानी, हर्ष (2007)। आई. आर. कोएलो निर्णय के प्रकाश में नौवीं अनुसूची। http://dx.doi.org/10.2139/ssrn.994264.

*****

आलेख उद्धरित करें:	सिंह, बृजेन्द्र एवं कुशवाहा, डॉ. कामिनी (2025)। भारतीय संविधान की नौवीं अनुसूची का एक अवलोकन, बुंदेलखंड जर्नल ऑफ एकेडमिक रिसर्च (बीजेएआर), वाल्यूम-1, अंक-1, जुलाई-सितंबर 2025, पृष्ठ 1-9।